'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक १८ | वाराणसी, मंगलवार, १० फरवरी, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

प्रार्थना-प्रवचन

डूंगरपुर (राज०) २५-१-'५९

मेरा आन्दोलन युग की माँग है

दस साल पहले एक बार मैं डूंगरपुर आया हूँ। वह सहज ही याद रह गया है। उस दिन दिवाली थी। हम रात को पहुँचे थे। यहाँ आने से चार-पाँच घंटे पूर्व हम एक छोटे-से देहात में रुके थे। हमारा दिवाली का दिन उसी देहात में बीता। देहातवालों के घर-घर हम गये थे। दूध, गुड़, शक्कर, घी आदि तरह-तरह की खाने की चीजें होती हैं, वे तो उन घरों में थी ही नहीं, किन्तु रोटी बनाने के लिए दो जून अनाज भी उनके घरों में नहीं था। प्रतिदिन की मजदूरी पर ही उनका सारा दारोमदार था। दिवाली की सारी आशा और उल्लास भी वही मजदूरी थी।

उसी रात को हम यहाँ डूंगरपुर पहुँचे थे। इस शहर में जिधर देखो, उधर दिये जल रहे थे। लोग रंग-बिरंगी पोशाक पहने हुए आनन्द कर रहे थे। दूकानों पर बहुत भीड़ थी। खरीद-बिक्री का काम जोरों पर था। वैसे तो यह भी कोई बड़ा शहर नहीं है, छोटा ही है। यहाँकी लोक-संख्या १४ हजार है। दस साल पहले तो और भी कम रही होगी। इस छोटे से शहर में इतना आनन्द और उस गाँव में इतना आनन्द! कल्पना कीजिये, छोटे-से शहर में ऐसा होता है तो बड़े शहर में क्या होता होगा? कलकत्ता, बंबई और दिल्ली में कितना भोग-विलास चलता है? शहरों और गाँवों का विरोध कितना भयानक है? यद्यपि शहरों में भी आनन्द केसाथ-साथ दारिद्र्य है, फिर भी वहाँ देहात की अपेक्षा आनन्द ही रहता है। शहर तथा गाँव का विरोध इतना भयानक होता है, यह बात मैं जानता था, किन्तु उस दिन दोनों जगह की एक साथ हालत देखने से मेरे चित्त पर बहुत गहरा असर हुआ। इसलिए मैं वह बात आज तक नहीं भूला हूँ। देहातों की दुर्दशा तथा शहरों की हालत बताते समय मैंने कई बार डूंगरपुर का नाम न लेते हुए इस बात का उल्लेख किया है। इसके लिए आप मुझे माफ करें।

रक्षण के पुराने साधन अब नहीं टिकेंगे

आपका यह शहर ऐतिहासिक शहर है। सामने किला है। हम लोग उसी किले के नीचे बैठे हैं। ऐसे सारे किले हमारे पूर्वजों ने रक्षण के लिए बनाये हैं। राणाप्रताप जैसे वीर पुरुषों ने ऐसे ही किलों के आधार पर आजादी की रक्षा की। ऐसे किले महाराष्ट्र में शिवाजी महाराज ने भी बनाये। उन किलों के सहारे शिवाजी ने बहुत-सी लड़ाइयाँ जीतीं। मेवाड़ में इसी प्रकार के किस्से इतिहास में पढ़ने को मिलते हैं। लेकिन अब जमाना बदल गया है। परिस्थितियाँ परिवर्तित हो गयी हैं। इन दिनों पुराने किलों से बचाव नहीं हो सकता है। जहाँ इतने बड़े-बड़े किले होते हैं, वहाँ बम गिराना आसान होता है। नीचे घरों पर बम गिराने की अपेक्षा ऐसे किलों पर ज्यादा आसानी से बम डाले जा सकते हैं। इस तरह पुराने जमाने के रक्षण के साधन आज निकम्मे बन गये हैं।

पहले लड़ाइयों में ५००-७०० मनुष्य रहते थे। बहुत हुए तो दो-तीन हजार मनुष्य रहते थे। पलासी की लड़ाई, जिसमें हिन्दुस्तान की आजादी खत्म हुई, में चार-पाँच हजार आदमी सम्मिलित हुए थे, लेकिन अब तो लड़ाइयों में करोड़ों लोग सम्मिलित होते हैं। इस ओर से करोड़ लोग और उस ओर से भी करोड़ लोग! फिर शस्त्रास्त्र भी वैसे ही भयानक तैयार कर लिये हैं। एक ही बम से हजारों लोग मौत के घाट उतरते हैं तथा हजारों जख्मी होते हैं। ऐसी परिस्थिति में पूर्वजों से प्रेरणा पाकर देश को हमें मजबूत बनाने का काम करना होगा। जो पूर्वजों ने किया, अगर आज वही करते रहेंगे तो हम मूर्ख साबित होंगे।

इन किलों पर चढ़कर हम चारों ओर सुन्दर दृश्य देख सकते हैं, एकांत हो तो ध्यान कर सकते हैं, उन पूर्वजों का स्मरण कर सकते हैं, जिन्होंने अनेकों कठिनाइयों, मुसीबतों, विपत्तियों को झेल कर वीरतापूर्वक आजादी की रक्षा की। प्राचीन युग के ये स्मृति-चिह्न हमारे लिए अत्यन्त उत्साह और प्रेरणा के केन्द्र हैं। अब आज आजादी की रक्षा करना, देश को मजबूत बनाना और हिन्दुस्तान की दौलत बढ़ाना—ये तीन बातें हमें करनी होंगी। उसके लिए हम किस प्रकार प्रयत्न करें, वह दृष्टि हमें यहाँ मिलती है।

आजादी की सही दिशा

आजादी के इन दस सालों में भी अभी हमारे जीवनस्तर में कोई खास फर्क नहीं पड़ा है। गरीबी ज्यों की त्यों है। सरकार कुछ-कुछ मदद करने की कोशिश करती है। दो पंचवर्षीय योजनाएँ हो चुकी हैं, तीसरी बन रही है, उससे जनता

को कुछ लाभ हो, ऐसा भी प्रयत्न हो रहा है, फिर भी दस साल पहले जो हालत थी, करीब-करीब वही हालत आज भी है। यह गरीबी मिटाने का काम हमें करना है। यह आवश्यकता हर नागरिक को महसूस होनी चाहिए।

देश की एकता बढ़ाना, गरीबी मिटाना और आजादी की रक्षा करना, ये तीन बातें वैसे अलग-अलग दीखती हैं, लेकिन इन तीनों के लिए एक ही उपाय है। वह यह कि हम लोग अपने आपको एक घर तक ही सीमित न मानें। हम अपने घर की चिन्ता करते हैं, वैसे ही पड़ोसी की भी चिन्ता करें। जो हमसे विपन्न हैं, उनकी हम मदद करें। इसमें कोई शक नहीं कि हम स्वयं गरीब हैं, दुःखी हैं, फिर भी हमसे ज्यादा दुःखी लोग हैं, उनके बारे में हमें गम्भीरतापूर्वक सोचना चाहिए। तुलसीदासजी ने लिखा है कि "परोपकार सार श्रुति का।" श्रुति आदि सभीका सार परोपकार है। अगर वही नहीं किया तो तुलसीदास जी पूछते हैं कि "कोन कहा नरतनु धरी साध्यो सो धोखे हू न विचार्यो ?" जिस कार्य के लिए मनुष्य-देह धारण किया है, उस कार्य के लिए कभी विचार भी करते हो या नहीं ? परोपकार की बात यदि जरा भी नहीं सोची तो नर-देह धारण करना व्यर्थ है। कुटुम्ब से बाहर जाकर कुछ न कुछ परोपकार का काम करना ही नरदेह का सार है। नरजन्म, श्रुति और वेदों का सार परोपकार है।

यहाँ सामने सर्वोदय-पात्र रखा है। वह क्या है ? एक साल से हम बराबर कह रहे हैं कि देश की आजादी के लिए कुछ न कुछ करना चाहिए, उसी स्मृतिचिह्न के तौर पर इसमें एक मुट्ठी अनाज डालें।

लोग कहते हैं कि प्रतिदिन एक मुट्ठी अनाज क्यों डालें ? महीने भर का एक या डेढ़ रत्तल एक ही साथ डाल दें तो क्या हर्ज है ? इस अनाज को संगृहीत करने की व्यवस्था सर्व-सेवा-संघ करेगा। इसलिए संघ की ओर से भले ही महीने में एक बार लेनेवाला आये, लेकिन आपको इसमें हर रोज डालने चाहिए। वह भी छोटे बच्चे के हाथ से डाला जाय, ऐसी कोशिश रहे। बच्चों की तालीम का इसमें बड़ा भारी मादा है।

"प्रेम की निशानी के तौर पर आपकी बात हिन्दुस्तान के सभी लोगों ने मान ली। अब हिन्दुस्तान के लगभग सात करोड़ घरों में प्रतिदिन एक मुट्ठी अनाज सर्वोदय-पात्र में डाला जाता है।" यह खबर अगर कोई मुझे दे तो मैं कहूँगा कि हिन्दुस्तान में एक महान क्रांति का काम हो रहा है। इसमें एक मुट्ठी अनाज की कीमत नहीं है, कीमत है हर रोज मुट्ठी भर अनाज डालने की। उससे राष्ट्र-सेवा और धर्म की स्थापना होगी।

ग्रामदान प्रेम का पन्थ है

अभी आपने सुना कि यहाँ ११० ग्रामदान हुए। जिनमें से ९ ग्रामदान आज हुए। यहाँके कार्यकर्ताओं ने खूब मेहनत की, गाँव-गाँव घूमे और ग्रामदान लाये। कल ही एक विदेशी भाई (मिस्टर आर्थर कोस्टलर) आये हैं। वे कह रहे थे कि "हिन्दुस्तान में कितनी जमीन मिली, यह उतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना कि जमीन प्राप्त करने का तरीका महत्त्वपूर्ण है। आपका प्रेम का तरीका हम लोगों को बहुत मदद दे रहा है। इससे दुनिया के अन्य देशों में भी बहुत काम होगा।"

इस तरह दूर-दूर से लोग देखने के लिए आते हैं कि हिन्दुस्तान में क्या चल रहा है ? कौन-से विचारों की स्थापना हो रही है ? किस पथ को प्रशस्त किया जा रहा है ? और उधर लोग कहते हैं कि इतने ग्रामदान हुए, जिनमें से कितने लोगों ने विचारपूर्वक दान दिया है। मैं कहना चाहता हूँ कि जितने लोगों ने विचारपूर्वक ग्रामदान दिया है, उनसे अधिक लोगों ने प्रेम तथा भक्तिपूर्वक ग्रामदान किया है।

आप सोचें तो आपके ध्यान में आयेगा कि बहुतों का जीवन प्रेम और भक्ति पर ही अधिष्ठित है, विचारों पर टिकनेवाले कम हैं। पूर्वापर से चलता है, इसलिए चलता है। खाने में क्या विचार होता है ? शादी में क्या विचार है ? बच्चे हो रहे है, इसमें क्या विचार है ? बीमार पड़ते हैं, इसमें क्या विचार है ? इन सबकी गहराई में जाने से लगेगा कि विचारों का स्थान तो है, लेकिन वह छोटा है। बड़ा स्थान भक्ति और प्रेम का है।

मैं पूछता हूँ कि प्रेम और भक्ति अगर विचार नहीं है तो क्या विचार से बाहर की चीज है ? इसलिए ये सारे ग्रामदान विचारपूर्वक दिये गये हैं, ऐसा ही माना जाय। मुझे तो यह बड़ी उत्साहदायी घटना मालूम होती है।

जमीन गाँव की हुई। मालकियत गाँव की हुई। कोई जमीन का मालिक नहीं रहा। गाँव में सब काम करेंगे। बाँटकर खायेंगे। किसीको भी दुःखी होने नहीं देंगे। सबके सुख-दुःख समान हो जायँ, यह तो संभव नहीं है, लेकिन किसीको दुःखी देखकर हम उसके दुःखों को दूर करने की कोशिश कर सकते हैं। किसीको दुःखी देखकर भी हँसते रहें तो हम इंसान नहीं हैं। पड़ोसी को दुःखी देखकर उसके लिए हमारे दिल में हमदर्दी उत्पन्न न हो तो मानवता कहाँ रही ? दुःखियों को दुःख में साथ देंगे और बाँट कर खायेंगे, यही प्रतिज्ञा हमें करनी चाहिए।

यह मेवाड़ का प्रदेश पावन प्रदेश है। यहाँ जहाँ-जहाँ जायँ, वहाँ ग्रामदान हो सकता है। आप सब शहरवाले लोग हैं। आपसे मेरी क्या माँग है, यही कहना चाहता हूँ।

शहर से तीन अपेक्षाएँ

देहात की सेवा के लिए शहर के लोग आयें। ये सर्वोदय-पात्र रख रहे हैं। इसमें से कुछ न कुछ मदद मिलती रहेगी। इसके अतिरिक्त सम्पत्तिदान से भी मदद मिलेगी। सम्पत्ति-त्याग वृत्ति से समन्वित होकर दुःखियों की सेवा के लिए कार्यकर्ता सामने आयें।

अभी कहनेवालों ने बड़े उत्साह से २५० सर्वोदय-पात्र रखने का कह दिया, लेकिन शान्ति-सैनिक के बारे में विचार कर रहे हैं। एक शान्ति-सैनिक मिला है।

लोग कहते हैं कि 'काम करने के लिए विशाल क्षेत्र है, गाँववाले उदार दिल से दान भी देते हैं, किन्तु कार्यकर्ताओं की कमी है।' यह कैसी विचित्र बात है। आदमी ही आदमी की कमी बता रहा है!! अगर कोई यन्त्र ऐसा कहे कि हम बेकार पड़े हैं, कोई मनुष्य हमारा इस्तेमाल करे या कोई चक्की कहे कि पीसनेवाले आयें या कोई जानवर ही कहे कि जोतनेवाले मिलें, तब तो बात ठीक है, लेकिन मनुष्य ही आकर मनुष्य के बारे में कहे तो अजीब बात है।

मैं आपको वेदान्त की एक कहानी सुनाता हूँ। कहानी का नाम है "को दशमः ?" 'दसवाँ कहाँ है ?' दस लड़के थे। मुसाफरी के लिए निकले। डूंगरपुर से चित्तौड़ के लिए रवाना हुए। एक मील चले होंगे। फिर कहने लगे कि हम जरा गिनती कर लें कि हम दस थे, वे पूरे हैं या नहीं ? एक लड़का गिनने लगा। एक, दो, तीन....छह, सात, आठ और नौ। गिनती रुक गयी। अरे! क्या हुआ ? दसवाँ कहाँ गया ? तुम्हारी गलती हो गयी होगी, मैं गिनता हूँ। यों कहकर हरएक ने गिना और सर्वानुमति से प्रस्ताव पास किया कि यहाँ नौ मनुष्य हैं। एक को कहीं छोड़कर आ गये हैं। अब क्या किया जाय ? वेदान्त

पूछता है कि "को दशमः ?" दसवा कौन है ? क्यों बच्चो ! कौन था, दसवाँ ? (बच्चों ने कहा–गिननेवाला स्वयं) बिलकुल ठीक ! गिननेवाले हरएक अपने-आपको गिनना भूल गये और नौ बताते गये। मनुष्य अपनी आत्मा को भूल जाता है, इसलिए वेदान्त कहता है कि पहले आत्मा को पहचान लो, फिर दुनिया को पहचानो ! आत्मज्ञान की प्रेरणा देने के लिए 'को दशमः ?' की तरह ही शान्ति-सैनिक में होता है। सब अपने आपको गिनना भूल जाते हैं।

विनोबा की गिनती

विनोबा ने दो बार गृहत्याग किया है। एक बार तो गान्धी जी के पास आने के लिए और दूसरी बार भूदान-यात्रा के लिए। दूसरी बार घर छोड़ा, तब मैं अकेला था। आज जो यह सारी मण्डली एकत्रित हुई है, वह उस समय नहीं थी। इतने कांग्रेसवाले भी देखने को कहाँ मिलते थे ? तेलंगाना में ३०० खून हुए थे, लोग घबरा गये थे, इसलिए लोग सभा के लिए भी इतनी बड़ी संख्या में इकट्ठे नहीं होते थे। लेकिन धीरे-धीरे काम बढ़ा। छह लाख लोगों ने दान दिया। ५००० करीब ग्रामदान मिले। सम्पत्तिदान प्राप्त हुआ। इस तरह यह सारा काम बढ़ता चला। क्योंकि बाबा अपनी गिनती करना नहीं भूला है। उसने लोगों से एक-दो-तीन गिनती नहीं की, किन्तु मैं एक, फिर दो, तीन गिनती की। इसलिए काम हुआ।

जब हम उत्तर प्रदेश में घूम रहे थे, तब चुनाव के दिन थे। हमारे साथ कुछ भूदानवाले लोग थे। वे एक दिन हमसे कहने लगे कि 'आप कृपा करके पन्द्रह दिन यात्रा स्थगित रखिये। अभी हमको, हमारे नेता 'इलेक्शन' में खड़े हैं, उनकी मदद में जाना होगा।'

मैंने उनसे कहा कि इलेक्शन के कारण गंगा रुकती है क्या ? नहीं। फिर बाबा कैसे रुकेगा। तुमको जाना है तो जाओ। मैं कहना चाहता हूँ कि उनमें से बहुत से लोग गये, फिर भी प्रति दिन सभाएँ होती रहीं। हजारों लोग आते रहे। हमारे विचार सुनते रहे। दान मिलता रहा। इसलिए कि आत्मा को भूले बिना बाबा अपना काम करता है। दूसरा कोई आता है तो दो हो जाते हैं, अन्यथा वह अकेला तो है ही। अतएव शांति-सैनिक बनने की माँग दूसरों से करने से पहले अपने से आरम्भ करनी चाहिए। मुझे आशा है कि यहाँ सेवक मिलेंगे।

सर्वोदय-पात्र तो देहात तथा शहर दोनों जगह घर-घर होने चाहिए।

तीसरी माँग है, भूदान-सम्पत्तिदान की। शहर में भूमिवान लोग रहते हैं। वे अपना भूभाग दें। सम्पत्ति के मालिक भी अपना थोड़ा हिस्सा दें। सबसे बड़ा श्रीमान पहल करेगा, ऐसा खयाल मत रखो। 'प्रथम' मैं से गिनती करो। राणाप्रताप काम करता था तो अपना नाम पहला रखता था कि दसवाँ ? हर आपत्ति में अपना नाम पहला रखता था। आप भी प्रथम नाम रखिये। सम्पत्ति-विभाजन की कोई आपत्ति करेगा तो वह मूर्ख माना जायगा ! आपकी सम्पत्ति का अमुक हिस्सा मुझे मिले, ऐसी अपेक्षा है।

युवक आगे आयें

भूदान का यह सारा काम मैंने नहीं किया है। समस्त कार्यकर्ताओं के अथक परिश्रम से यह हुआ है। कार्यकर्ता गाँव-गाँव जाते हैं, ग्रामदान लाते हैं और बाबा के नाम पर चढ़ाते हैं। इस तरह शांति-सेना में नाम देने से पूर्व ही जिन्होंने कार्यारंभ कर दिया है, वे सोचते हैं "हम लोग नाम बाद में देंगे, नये लोगों को नाम देने के पश्चात् काम करने को सूझता है, इसलिए पहले नये लोग नाम दें। पुराने लोग नाम देंगे तो काम धीरे-धीरे शुरू होगा।" मैं मानता हूँ कि वे ठीक ही सोचते हैं। अब नये लोग आगे आयें।

डूंगरपुर में सामाजिक अहिंसक क्रांति हो और इसके आलोक में समस्त राजस्थान एक हो जाय, यही मेरी कामना है।

उदयपुर जिले के सार्वजनिक कार्यकर्ताओं से

घोडी (राज०) २६-१-'५९

ग्राम-स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और उसे हम अवश्य प्राप्त करेंगे

अंग्रेजों का राज्य यहाँ आया था। इतिहास कहता है कि हिंदुस्तान के लोगों ने उसका बहुत स्वागत किया। बंबई राज्य आज जिस प्रदेश में है, वह प्रदेश जब अंग्रेजों के हाथ में आया, तब वहाँ एलफिंस्टन नाम के गवर्नर थे। एलफिंस्टन महाशय ने एक इतिहास लिखा है। बहुत प्रसिद्ध इतिहास है। वे जब बाम्बे स्टेट में आये, तब वहाँका पुराना राज्य समाप्त हुआ था। उसके विषय में लोगों में कोई दुःख नहीं दीखता था, बल्कि बड़ी खुशी थी। यद्यपि जो राज गया, वह जिसे हम स्वराज्य नाम दे सकते हैं, वह था। यानी अपने लोगों का ही अपने लोगों पर राज्य था। जो स्वराज्य का एक मतलब माना जाता है।

भारत का इतिहास

एलफिंस्टन ने अपने इतिहास में लिखा है, देशी राजाओं के कारण सारी प्रजा बहुत तंग आ गयी थी, व्यापारियों की जमात घृणित हो चुकी थी। उसके लिए कोई खास आदर नहीं रहता था। एक जमाना था, जब कि भारत में व्यापारियों के लिए बहुत आदर और प्रतिष्ठा थी। उनको "महाजन" कहते थे। उन-पर लोगों का बहुत विश्वास था। परन्तु जब अंग्रेज आये, तब व्यापारी वह विश्वास खो चुके थे। वे लोगों के शोषण में लगे थे। राज्यकर्ता अपनेको मालिक मानते थे। जैसे खेत का मालिक होता है, वैसे वे अपने को राज्य के मालिक मानते थे। भगवान की हैसियत में अपने को मानते थे और जैसा चाहे वैसा बरतते थे। इसलिए उनकी नैतिक प्रतिष्ठा नहीं रही थी।

ब्राह्मणों की हालत ऐसी थी कि वे किसी नयी विद्या की खोज नहीं कर रहे थे। प्राचीन काल से जो पुरानी विद्या चली आयी थी, उसका भी अध्ययन नहीं था। फिर भी बिना अध्ययन के, बिना आचरण के, अपनी जमात को ऊँचा मानते थे। कारीगर, काम करनेवालों का वर्ग था, जिसके आधार पर सारा समाज खड़ा था, वह सबसे नीच माना जाता था। यह जो निचला वर्ग है, वह जिस दिन समाप्त होगा, उस दिन समाज रहेगा ही नहीं। ऊँचे वर्गवाले अगर काम करेंगे तो प्रतिष्ठा खो देंगे, ऐसी धारणा थी। पर नीचे का वर्ग नहीं रहेगा तो समाज समाप्त हो जायगा। इसलिए जो आवश्यक वर्ग था, वह काम करता था और कायम था, परन्तु सबसे नीचे माना जाता था। जिसपर सबका दारोमदार था, उसकी इज्जत नहीं थी। इससे ज्यादा हिंदुस्तान का वर्णन और क्या किया जा सकता है ?

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, चारों की ऐसी हालत थी। असंख्य लोग इस्लाम में जा चुके थे। इस्लाम धर्म का आचरण नहीं हो रहा था। धर्म-परिवर्तन का मतलब यही

था कि जिस समाज में वे रहते थे, उस समाज के लिए उनके मन में घृणा थी। इसके सिवाय धर्म-परिवर्तन का कोई कारण नहीं था। अपने देश की यह हालत थी। अंग्रेजों का राज्य आने से लोग सुखी हो गये।

नौकरशाही कैसे खड़ी हुई

चन्द वर्षों तक यह चला। सरकार में काम करनेवालों का जो वर्ग था, उसको इस बात की खुशी हो रही थी कि पहली तारीख आते ही उनको निश्चित तनख्वाह मिल जायगी। यही उनका आनन्द था। अंग्रेजी राज की धाक भी ऐसी थी कि आफिस खुलने का समय अगर ग्यारह बजे हो तो किसीकी क्या मजाल कि ५ मिनट भी देरी से आये! पाँच बजे आफिस बन्द होता था तो खुश होकर वे जाते थे कि हमें काम नहीं है। रात में अब हमें कोई नहीं बुलायेगा। इसके पहले तो उन्होंने निश्चित की गयी तनख्वाह निश्चित तारीख पर कभी नहीं पायी थी और आफिस के टाइम के अलावा भी आफिस का काम उनको करना पड़ता था। यह सारा अंग्रेजों के राज्य में नहीं था, इसलिए वे खुश थे। अंग्रेजों ने देखा कि ये सारे नौकर खुश हैं और उनको अपने समाज के लिए घृणा भी है। अंग्रेजों के लिए आदर और अपने समाज के लिए घृणा, ये दोनों अपनी बड़ी पूँजी है, ऐसा अंग्रेजों ने माना। अपने लिए जो आदर है, वह भी अच्छा है और उनको अपने समाज से घृणा है, यह भी अच्छा है। इस तरह दोनों को अच्छा ही समझा। अंग्रेजों ने देख लिया कि यह जमात अपना राज यहाँ लाने के लिए मदद करेगी, इसलिए वे इस नौकर वर्ग पर खुश थे, इसीलिए फिर उन्होंने तालीम का भी फैसला कर दिया और अंग्रेजी तालीम देना तय किया। अंग्रेजी तालीम सबके लिए संभव नहीं थी, गाँव-गाँव के लिए उस तालीम का कोई उपयोग नहीं था, जो तालीम पानेवाले थे, वे शहर के लोग थे और शहर में ही रहते थे। एक नौकर वर्ग तैयार करने की अंग्रेजों की दृष्टि थी और उनका वह काम बना।

अंग्रेजी राज्य का परिणाम

जैसे-जैसे अंग्रेजों का राज्य चला, भारत का शोषण बढ़ता गया। ग्रामोद्योग एक-एक कर टूटे। नौकर वर्ग खड़ा हुआ। उनके ऊपर अंग्रेजों ने अपना नौकर वर्ग रखा था। उनका अपना स्वतंत्र स्टैण्डर्ड था। जो नौकर बने, वे लोग हिंदुस्तान के नये शोषक बन गये। यहाँ अंग्रेजी विद्या आयी तो नोकरशाही का द्वार खुल गया। लोग न सिर्फ अंग्रेजी सीखकर नौकरी पा सकते थे, परंतु अंग्रेजी के जरिये दुनिया का ज्ञान भी हासिल कर सकते थे। परिणामतः पश्चिम में जो आंदोलन हुए, फ्रांस, इटली, जर्मनी और इंग्लैण्ड के बीच जो कुछ चला, रूस में जो शक्ति प्रगट हुई, यह सब बाहर आया। धीरे-धीरे भारत का स्थान दुनिया में कहाँ है, हम कहाँ हैं, इसका भान होने लगा। फिर असंतोष प्रगट हुआ और बाद में कांग्रेस का जन्म हुआ।

कांग्रेस ने लोगों के दुःख सरकार के सामने रखने का काम किया। धीरे-धीरे यह ध्यान में आया कि सारे दुःख तब तक दूर नहीं हो सकते हैं, जब तक स्वराज्य नहीं आयेगा। १९०६ में कलकत्ता कांग्रेस में दादाभाई नौरोजी ने 'स्वराज्य' की घोषणा की। १९४७ में हिंदुस्तान को 'स्वराज्य' मिला, चालीस साल बाद स्वराज्य मिला। इस बीच लोकमान्य तिलक का भी आंदोलन हुआ। फिर गांधीजी आये। आज भी कुछ नेता हैं, जो गांधीजी के हाथ के नीचे तैयार हुए हैं।

सबसे बड़ी बात यह हुई कि कांग्रेस के जो सच्चे नेता थे, उनका परतन्त्रता की अवस्था में आत्म-संशोधन शुरू हुआ। उन्हीं लोगों में से मुख्य-मुख्य नेताओं ने अन्तःशोधन, धर्मसुधार तथा अध्यात्मसुधार का काम किया। परिणामस्वरूप अंदर से एक जागृति हुई। कुछ जागृति अंदर से हुई, कुछ ज्ञान बाहर से भी हुआ। राजा राममोहन, दयानंद, रामकृष्ण, विवेकानंद इन लोगों ने समाज-सुधार की, बात की जिनसे नजर अंदर गयी। फिर इतिहास, अर्थशास्त्र का ज्ञान हुआ और उसके कारण स्वराज्य की आकांक्षा पैदा हुई।

यह सब मैं किसलिए बोल रहा हूँ? इसीलिए कि आज जो कार्यकर्त्ता हैं, उनके ध्यान में आ जाय कि पुराने जमाने में कांग्रेस में एक मिशन था और उसकी पूर्त्ति के लोए कुछ-न-कुछ त्याग, परिश्रम, करना पड़ेगा, ऐसा वे समझ गये थे। अब स्वराज्य आया। स्वराज्य के बाद जो कार्यकर्त्ता हैं, वे अंतर्मुख होकर देखें कि क्या हमारे सामने कोई मिशन है? जिसके लिए हम ऊपर से प्रेरित होकर अपनी जिंदगी न्यौछावर कर दें?

आजादी के बाद राष्ट्र-प्रेरणा कुंठित

अभी सरकार हमारे हाथ में है, इलेक्शन हमारे हाथ में है। फलाने को चुनकर देना है और फलाने ही चुनकर आयें, इसीकी हमें फिक्र है। सरकार में हमारा प्रतिनिधि चला गया तो हमने काम कर लिया, ऐसा हम मानते हैं। बाकी जितना सेवा का काम है, वह सरकार करेगी। धीरे-धीरे हिन्दुस्तान के लोगों के अन्दर जो भावना थी, वह नहीं रही। नहीं तो क्या वजह है कि जो काम राममोहन से लेकर रामकृष्ण तक हुआ, जो शुद्धि के आंदोलन महात्मा गांधी, रवींद्रनाथ टैगोर जैसे लोगों ने चलाये, वे कार्य इन दिनों क्यों नहीं दीख रहे हैं? क्या हम यह समझें कि समाज-सुधार हो गया? क्या उपासना-सुधार हो गया? धर्म-सुधार हो गया? वास्तव में ऐसा नहीं हुआ है। छूत-अछूत भेद मिटाने के लिए राममोहन, विवेकानन्द और दयानन्द इन लोगों ने क्या कहा और क्या किया! गांधीजी ने क्या कहा और क्या किया? ऐसे ही और अनेक लोग वे कैसा सोचते थे और उनमें कितनी तड़पन थी? जो उपासना-शुद्धि की बात लोग सोचते थे, हिन्दु मुस्लिम यूनिटी की बात करते थे, वह आज कहाँ रही है?

स्वदेशी का आन्दोलन हमने चलाया। आज हम बाजार में जाते हैं तो यह नहीं सोचते हैं कि किस देश का यह माल है? विदेशों का माल खूब आ रहा है, बाजार भरे जा रहे हैं। विदेशी माल इस तरह आता रहेगा तो उन देशों के लोगों की हिन्दुस्तान पर कभी वक्र दृष्टि नहीं रहेगी। वे ऐसा ही चाहेंगे कि भले ही हिन्दुस्तान पर हमारा राज्य न रहे, पर हिन्दुस्तान में ऐसा स्वराज्य रहे, जिससे वहाँ हमारा माल जा सके और हमारा व्यापार अच्छा चले।

इस तरह आप देखते हैं कि आज वह स्वदेशी की भावना नहीं रही। छूत-अछूत भेद मिटाने के लिए कोशिश नहीं चल रही है, लोकमान्य और गांधीजी के जमाने में जो शराबबंदी का उत्तम काम हुआ, वही आज हो रहा है। जो दयानंद स्वामी की आकांक्षा थी, वह भी आज नहीं रही है।

आप निराश हों, ऐसा चित्र मैं आपके सामने नहीं रखना चाहता हूँ, बल्कि मैं सुझाना चाहता हूँ कि जहाँ ऐसी प्रेरणा नहीं है, वहाँ जीवित मनुष्य का जीवन बिलकुल मुर्दासा बन जाता है। फिर आपस में झगड़े होते हैं। तरह-तरह के पक्ष निर्माण होते हैं। फिर एक ही पक्ष में उपपक्ष भी होते हैं और ग्रूप पॉलिटिक्स चलता है।

आज आप देखते हैं कि हिन्दुस्तान में ५५ लाख नौकर हैं। वह संख्या बढ़नेवाली है। ये नौकर बेकारी निवारण का एक मार्ग है, ऐसा कहा जाता है। बेकारों को हमने चान्स दिये हैं।

आगामी पंचवर्षीय योजना में इतने-इतने शिक्षकों को हम जोब्स देनेवाले हैं। इतनी पुलिस रहेगी, इतने रेलवे के कर्मचारी रहेंगे, ऐसा कहा जाता है। लश्कर के लिए भी करोड़ों रुपयों का खर्च होता है और बेकारी-निवारण के लिए भी गलत ढंग से खर्च हो जाता है।

इन दिनों ५५ लाख नौकरों का पोषण ३७॥ करोड़ लोगों को करना पड़ता है। हिसाब लगाया जाय तो १३ परिवार को १ परिवार का पोषण करना पड़ता है। नौकर के साथ उसका परिवार तो आता ही है। इस तरह एक 'मीडिल क्लास' खड़ा हो गया है। जो उत्पादन के काम से परे है। उनका जीवन-मान भी ऊँचा है। उत्पादन के काम से मुक्त, शरीर-परिश्रम से मुक्त, जीवन-मान ऊँचा इस तरह की व्यवस्था की गयी है। साथ-साथ उनके हाथ में दूसरे को दबाने की शक्ति भी रहेगी। अगर वे चाहें तो दूसरों को दबा सकते हैं। यह चिल्लाहट होती है कि अभी भी जो शिक्षित हैं, वे बेकार हैं। इसलिए उनको और काम दिया जाय। इस बेकारी निवारण के लिए संभव है कि ५५ लाख की संख्या १ करोड़ की हो जायगी।

आज तेरह परिवारों से १ परिवार का पोषण होता है। कल ७ परिवारों में से १ परिवार का पोषण होगा। इस तरह उत्पादक वर्ग नहीं, पर अनुत्पादक मध्यम वर्ग खड़ा होगा। देश को इससे अधिक भयानक खतरा दूसरा कोई नहीं हो सकता है। ३०० करोड़ रु० का खर्च लश्कर पर होता है वह तो अलग ही है, पर ५५ लाख नौकर वर्ग के लिए जो खर्च हो रहा है, क्या यह अपने गरीब देश के लिए शोभा दायक है?

एक ही रास्ता

इसमें से छुटकारा पाने का रास्ता एक ही है। उसे मैं लोकनीति कहता हूँ। आज की राजनीति को बदलना होगा। सरकारी शक्ति के बदले लोकशक्ति खड़ी हो। चन्द ही कार्यकर्ता मेरे सामने बैठे हैं और मैं बातें बहुत गहरी कर रहा हूँ। आप ध्यान से सुनिये। मैंने कहा—सरकारी शक्ति के बदले में याने आगे चलकर सरकार की जगह लेनेवाली शक्ति खड़ी हो। इस तरह स्वराज्य का रूपान्तर सच्चे लोकराज्य में करना होगा। यह ध्यान में आयेगा तो प्रेरणा मिलेगी। पर-राज्य भी जहाँ लोगों को अच्छा लगा, वहाँ स्वराज्य तो अच्छा लगेगा ही। पर-राज्य में भी प्रामाणिकता से काम करते हैं तो लोगों की सेवा होती है, ऐसा माननेवालों में रमेशचन्द्र दत्त, ईश्वर-चन्द्र विद्यासागर, न्यायमूर्ति रानाडे, ऐसे बड़े-बड़े लोग थे। सरकार में जाकर जनता की सेवा हम कर सकते हैं, यह भावना लेकर ही वे सरकार में गये थे। परदेशी राज्य में भी ऐसी प्रेरणा मिलती है तो स्वराज्य में भी नौकरी की प्रेरणा लोगों को मिले, इसमें आश्चर्य नहीं है। मैं तो यह मानता हूँ कि प्रामाणिकता से नौकरी की जाय—सेना में, रेलवे में, पुलिस में—तो वह सचमुच देश की सेवा हो सकती है। उन लोगों का यह दावा है कि हम देश के सेवक हैं। उन लोगों का यह दावा हमें मानना होगा। लेकिन आया हुआ स्वराज्य अधूरा है। पूर्ण स्वराज्य नहीं है। सामाजिक और आर्थिक आजादी जब तक नहीं मिलती है, तब तक स्वराज्य का काम अधूरा है, ऐसा मानना चाहिए।

अब हमें नया मिशन उठाना चाहिए। उस मिशन का नाम तो मिल चुका है। पर वह शब्द रूपेण मिला है। वह अभी तक हमारे हृदय में पैठा नहीं है। वह है सर्वोदय। स्वराज्य के बाद सर्वोदय का मन्त्र हमें मिला है। एक शब्द की स्फूर्ति खत्म होती है, वहाँ दूसरा शब्द स्फूर्ति देने के लिए न मिले तो समाज उन्नत नहीं हो सकता। ऐसे शब्द की खोज में समाज सौ-सौ साल बिताता है। एक शब्द की पूर्ति हो रही थी, उतने में ही नया शब्द निकला। इसका कारण यही था कि स्वराज्य के जो नेता थे, उनको अंतःशुद्धि की प्रेरणा हुई थी। स्वराज्य की व्याख्या ही ऐसी थी। स्वराज्य की व्याख्या ही सर्वोदय में परिणत हुई। अब हमें नाम तो नया मिल गया है, उसके लिए स्फूर्ति पाकर गाँव-गाँव में स्वराज्य की भावना निर्माण करनी है। यह निश्चय हमें करना होगा।

अभी पंडित नेहरू अहमदाबाद में मुझसे मिले थे। उनका प्रेम है, इसलिए बीच-बीच में वे मिलते हैं। उनकी उपस्थिति में एक सभा में भाषण देते हुए मैंने कहा था कि लोकमान्य तिलक ने स्वराज्य की व्याख्या की थी कि 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध हक है और वह हम हासिल करके रहेंगे।' वैसे ही इस जमाने में मैं कहता हूँ कि 'ग्रामस्वराज्य अपना जन्मसिद्ध हक है और वह हमें प्राप्त करना है।' देश में स्वराज्य आया है, परन्तु वह दिल्ली, बम्बई, जयपुर जैसे बड़े बड़े शहरों में आया है और उदयपुर जैसे शहरों में थोड़ा-थोड़ा हिस्सा पहुँचा होगा। परन्तु ग्राम-ग्राम में स्वराज्य नहीं आया है। अभी तक ग्राम-स्वराज्य नहीं हुआ है। गाँव का कारोबार, गाँव का शिक्षण, गाँव का पोषण, गाँव का रक्षण, गाँव की योजना गाँव कर रहे हैं और ऊपरवाले सिर्फ संयोजन कर रहे हैं, ऐसा नहीं हुआ है, ऐसा होना चाहिए। गाँव-गाँव में स्वराज्य होना चाहिए।

ग्राम की जनता बाहर का नियमन तो नहीं करेगी। अन्दर का नियमन करेगी। दूसरों को सुखी करेगी और स्वयं सुखी बनेगी। यह सारा काम करना है। यह आप समझेंगे तो ग्रामदान की आवश्यकता आपके ध्यान में आयेगी। इसलिए यहाँ यह नारा लगता है कि "हम पीछे नहीं रहेंगे"—मतलब यही है कि दूसरा आगे नहीं जाता है। सारा समाज पिछड़ जाय तो हम किसीके पीछे नहीं हैं। इससे आनन्द ही है। परन्तु वह जो तड़पन थी, तीव्रता थी कि अमुक कार्य समाज में होना ही चाहिए, यह जब तक महसूस नहीं होगा, तब तक क्रांति नहीं होगी।

बूढ़े, युवक शक्ति को समझें

मैं बूढ़ों से अपेक्षा नहीं रखता हूँ। जो एक क्रान्ति के सिपाही रह चुके, वे दूसरी क्रान्ति के सिपाही नहीं बन सकते हैं। लेकिन उनका आशीर्वाद हमें मिलेगा। उनका आशीर्वाद लेकर ही जवानों को आगे बढ़ना है। वे आशीर्वाद देने की जगह विरोध करें तो भी कुछ खोने का नहीं है। इसकी मिसाल बहुत पुरानी हो गयी है। मैं हमेशा राम और परशुराम की मिसाल देता हूँ। वे दोनों विष्णु के अवतार थे। परन्तु राम के विरोध में परशुराम खड़ा हुआ और आखिर में वह समझ गया कि यह तो वही अवतार है। पहला अवतार दूसरे अवतार को नहीं पहचान सका था। इसलिए कभी-कभी पुराना अवतार नये अवतार के खिलाफ खड़ा होता है। यह बहुत ही सुन्दर मिसाल है, जो तुलसीदासजी को ही सूझी है।

मैं उत्तर प्रदेश में घूमता था, तब सुनता था कि जवानों में अनुशासन नहीं है। मैंने कहा था कि इसके लिए आपको तुलसीरामायणपर जब्त करना होगा। उसमें राम की उपस्थिति में लक्ष्मण और परशु-राम का संवाद है। वह पढ़ने के बाद बड़ों के लिए नाहक आदर की अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए, ऐसा मालूम होगा। नाहक आदर नहीं मिलेगा। वह आपको हक के साथ मिलेगा। इतनी बदनामी

और इतना अपमान लक्ष्मण ने परशुराम का किया है कि मैं नहीं मानता कि इतना ज्यादा अपमान आज के जवान बूढ़ों का करते होंगे। लक्ष्मण ने जितना अपमान परशुराम का किया है, उतना आज के जवान नहीं करते हैं। इसलिए जवानों को काम करना है, बूढ़ों का आशीर्वाद तो है ही। अगर नहीं मिला तो परवाह नहीं करनी है।

गांधीजी का विरोध क्या नहीं हुआ था? बड़े-बड़े लोगों ने उनका विरोध किया। लेकिन बड़ी कुशलता से उस विरोध में से गांधीजी पार हुए। पार्लियामेन्ट के प्रोग्राम के लिए उनका काफी विरोध हुआ था। यद्यपि नया विचार शांत, सुशील एवं गहन होता है तो भी पुराने विचार को तकलीफ होती ही है।

यह एक नया ही विचार हमें मिला है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि ग्राम-ग्राम के लोग उठें, तभी यह काम होगा। बम्बई, दिल्ली से लोग उठने से यह काम नहीं होगा। वैसे तो शहर से कार्यकर्ता आयें तो ठीक ही है। शहर से भी कार्यकर्ता मिलने चाहिए। लेकिन हमें देहात से कार्यकर्ता ज्यादा चाहिए। गाँव-गाँव में ही वे खड़े हों। यह नयी क्रांति तो देहात में ही होगी। शहरों से क्रांति का इतिहास लिखनेवाले मिलेंगे। इतिहास-लेखक पहले विरोध तो नहीं करेंगे, लेकिन मदद भी नहीं करेंगे। क्रांति नहीं होती है, तब तक उनको मदद देने का उत्साह नहीं होगा। परन्तु बाद में वे इतिहास जरूर लिखेंगे। फिर इसकी फिक्र नहीं रहेगी कि हमारी कीर्ति कौन फैलायेगा! इसलिए देहात से कार्यकर्ता हमें मिलने चाहिए।

आप कांग्रेस में हैं, कांग्रेस की प्रतिष्ठा आपके हाथ में है। दादाभाई नौरोजी और गांधीजी के जमाने की कांग्रेस आपके हाथ में है। वह मूलधन है। नयी क्रांति की भावना लेकर आप आगे बढ़ेंगे, ऐसी मैं आशा करता हूँ। जैसे अभी नागपुर में प्रस्ताव पास हुआ, वैसा काम नहीं करेंगे तो जैसी प्रतिष्ठा थी, वह भी जायगी। हिन्दुस्तान में गांधीजी का जो सुंदर स्मरण था, वह भी जायगा। कांग्रेस में प्रतिक्रियावादी ताकतें प्रवेश करेंगी और भारत की प्रगति में रोड़ा डालेंगी तो समझ लीजिये कि कांग्रेस की इज्जत मिट्टी में मिल जायगी। यों समझकर आप इस काम की ओर देखिये। इस काम में दिलचस्पी लीजिये। मुझे इस बात की खुशी है कि जगह-जगह कांग्रेस ने कुछ काम किया है। परन्तु यह कहने में मुझे आनन्द नहीं आयेगा, अगर आप फुरसत से काम करेंगे। फुरसत से काम करने से स्फूर्ति नहीं मिलती है।

आप राणा प्रताप का नाम बार-बार लेते हैं, उसे क्या दुःख नहीं होगा कि मेरी भूमि में मेरा ही नाम चल रहा है और दूसरा नाम आगे नहीं आ रहा है। पिता को तभी खुशी होती है, जब पुत्र उससे भी प्रतापी होता है। इसलिए यहाँ आप काम कीजिये, आगे आइये और राणा प्रताप की इस भूमि को प्रतापी बनाइये। यह नहीं होगा तो उसे खुशी नहीं होगी, ऐसा मेरा खयाल है। इसलिए उस नाम की प्रतिष्ठा आप रखिये।

पदयात्रियों के साथ

देवगढ़ वारिया (पंचमहाल) २०-१०-'५८

जीवन-साधना की दिशा में मौन का महत्त्व

तीन वर्ष हुए, मैंने सार्वजनिक मौन-प्रार्थना प्रारंभ की। सुबह-शाम अलग-अलग प्रार्थनाएँ चलती हैं, लेकिन सार्वजनिक मौन प्रार्थना का अत्यन्त महत्त्व है। सभी मिलकर शान्त चित्त से प्रार्थना करें, यह बात मेरे मन में बहुत दिनों से चल रही थी। विचार पैदा होता है, स्थिर होता है और कालान्तर में जाकर परिपक्व होता है। अनुभव की समृद्धि जितनी बढ़ती है, उतनी ही हिम्मत बढ़ती है। मैंने आन्ध्र-प्रवेश के समय यह विचार जनता के समक्ष प्रस्तुत किया।

पहले सार्वजनिक प्रार्थना में स्थितप्रज्ञ के श्लोक गाये जाते थे, किन्तु आन्ध्र में मैंने शाम की प्रार्थना सभा में सर्वप्रथम मौन-प्रार्थना का श्रीगणेश किया। तबसे अब तक बराबर सार्वजनिक प्रार्थना मौनपूर्वक ही हो रही है।

यों तो मेरा मौन का व्यक्तिगत अभ्यास बहुत ही पुराना है। इससे आप अपरिचित नहीं हैं। चिन्तन के लिए मन पूर्ण रूप से मुक्त रहे। यही प्रारंभ में मेरी मौन साधना को अभिप्रेत रहा है।

जहाँ तक मुझे स्मरण है, लगभग १९२७ में मैंने मौन-व्रत लिया। आज उस बात को तीस वर्ष से ज्यादा हो गये। वह मौन मतलबी मौन था। संध्याकालीन प्रार्थना के बाद शुरू होकर प्रातःकालीन प्रार्थना के पश्चात् छूटता था। दो प्रार्थनाओं के बीच ९-१० घंटों का अन्तर हुआ करता है। फिर संध्याकालीन प्रार्थना देरी से देरी में तथा प्रातःकालीन प्रार्थना जल्दी से जल्दी करने की पद्धति चली। इससे यह अन्तर और भी कम होता गया। पीछे बहुत कम समय मौन के लिए बच गया। जो चंद घंटे मौन के लिए रहे, उन्हीं घंटों में नींद का भी समय था। निद्रा में तो सभी मौन रहते ही हैं।

मौन से विचारों का विकास

मौनव्रत में विचार करने से तरह-तरह की अनुभूतियाँ होती हैं। कई लोग मौन का बाह्य उपयोग देखते हैं। मेरा ध्यान शुरू से ही बाह्य उपयोग की ओर नहीं रहा है। यद्यपि यह सच है कि रात को देर तक बातें चलती रहें तो बीमारों को कष्ट तथा दूसरों को व्यवधान होता है। इससे वातावरण को शान्त करने में भी मौन का उपयोग है। यह उपयोग स्थूल वस्तु है। मैंने इस उपयोग को गौण माना है।

गीता के आठवें अध्याय में भगवान ने अन्तकाल में परमेश्वर के स्मरण का महत्त्व बतलाया है। अन्तकाल में भगवान का स्मरण तभी हो सकता है, जब कि जीवन भर उनका स्मरण होता रहे। अन्तिम समय में सर्वकालिक जीवन का परिणाम होता है। यही पाथेय लेकर मानव आगे बढ़ता है। मर जाने के बाद क्या होगा? यह तो कोई जानता नहीं। फिर भी गीता में इस बात पर अत्यन्त बल दिया है कि अन्तिम स्मरण के अनुरूप ही आगे की प्रेरणा मिलती है। इस विषय पर श्री किशोरलाल भाई के साथ बड़ी लम्बी-चौड़ी चर्चाएँ हुआ करती थीं।

इसीपर मुझे लगा कि अन्तिम काल का नाटक हर रोज होना चाहिए। अन्तिम काल कब आयेगा और किस तरह आयेगा, इसकी कल्पना तो की नहीं जा सकती, किन्तु यों देखा जाय तो प्रतिदिन हमारे जीवन का अन्त हुआ करता है। आखिर निद्रा भी तो मरण की पूर्व प्रक्रिया ही है, जो रोज की अनुभूति है। इसलिए यदि हम हर रोज सोते समय अन्तकाल के स्मरण का नाटक करें तो अन्तकाल के समय बाजी अपने

हाथ में रहेगी। प्रतिदिन का अभ्यास मौके पर सफलता दे सकता है।

सोने से पूर्व ऐसा सोचना कुछ लोगों को अच्छा नहीं लगता। वे कहते हैं कि जब भगवान का बुलावा आयेगा, तब जैसा होगा, कर लिया जायगा। किन्तु इस तरह सोचना ठीक नहीं है।

'रोज मरण आता है' यह मानकर पवित्र स्मरण के साथ सो जाना चाहिए। यही मैंने सोचा। फिर मैंने इसकी घोषणा भी कर दी कि सायंप्रार्थना के बाद मैं मौन रखूँगा। शाम की प्रार्थना सात बजे हुआ करती थी, तबसे सुबह की दूसरी प्रार्थना तक मैंने मौन प्रारम्भ कर दिया।

मौन के प्रथम दिन ही मुझे शान्ति का विलक्षण अनुभव हुआ। बोलना बन्द हो जाने से वाचन शुरू हो गया। यह वाचन धार्मिक पुस्तकों का ही हुआ करता था, यह अलग से बताने की आवश्यकता नहीं है। आज तक मैंने जितनी भी पुस्तकें पढ़ी हैं, वे अधिकांश धार्मिक ही थीं। दूसरी यदि कोई पढ़ीं भी तो वे धर्म के अंगरूप में ही पढ़ी हैं। पढ़ने के अनन्तर केवल ध्यान और चिन्तन ही करता था। इससे कितनी शक्ति मिलती है, इसकी कल्पना मुझे पहले नहीं थी। सचमुच अद्भुत अनुभव हुआ। परिणामस्वरूप विचारों के विकास का एक शास्त्र ही मेरे हाथ लग गया। जिस तरह खेत में बीज बोकर, उसपर मिट्टी डाल दी जाय तो बीज दिखायी नहीं पड़ता, फिर भी अन्दर ही अन्दर वह विकसित होता है और तीन दिनों के पश्चात् जब अंकुर फूटता है, तभी ज्ञात होता है कि अन्दर कितनी सूक्ष्म क्रियाएँ सम्पन्न हुई। इसी तरह प्रार्थना, ध्यान व चिन्तन करनेवाले मनुष्य पर निद्रा रूपी मिट्टी डाल दी जाय तो कभी-कभी जागृति में हम जिन समस्याओं का समाधान नहीं कर सकते हैं, वह समाधान निद्रा में मिल जाता है। अथवा कई बार सुबह उठते ही बड़े सुन्दर निर्णय हो जाते हैं। समाधि में गहरे उतरने पर विचारों का विकास होता है, किन्तु गहरे उतरने के बाद भी कभी-कभी जो फल नहीं मिल पाता, वह निद्रा की प्रक्रिया में मिल जाता है, यह मुझे एकाधिक बार अनुभव हुआ। उस समय मेरे सामने शंकराचार्य के इस कथन का पूरा तथ्य प्रकट हो गया कि 'निद्रा समाधिस्थितिः'।

मतलबी मौन और उसका परिणाम

वर्धा में सायंकालीन प्रार्थनासभा सात बजे होती थी, वह दस-बारह बजे तक चल जाती थी। इस क्रम को भी परिवर्तित करने का विचार मेरे मन में आया और मैंने एक दिन यह घोषित किया कि मैं पाँच बजे ही प्रवचन करूँगा। लोगों ने कहा कि प्रार्थना-सभा में दस-पाँच लोगों से अधिक उपस्थित नहीं हो सकेंगे, अतः सभा देरी से करें। लेकिन मैंने नहीं माना और अपने समय पर ही प्रवचन चालू रखा। धीरे-धीरे लोग ठीक समय पर उपस्थित होने लग गये। मैं यह कह रहा था कि मतलबी मौन में केवल निद्रा सधती है और उसके परिणाम स्वरूप विचारों का विकास होता है। इसीलिए मैं आग्रह पूर्वक कहा करता हूँ कि जो जल्दी उठने का निर्णय करते हैं, उन्हें जल्दी सोने का भी निर्णय करना चाहिए। सोने के बाद दूसरा कोई चिन्तन नहीं करना चाहिए। भले ही इसके लिए प्रार्थना कुछ देर से की जाय, पर उसके बाद दिनभर के समस्त कार्यक्रम तथा परोपकार की प्रवृत्तियाँ भी समाप्त करके मरे हुए जैसा बन जाना चाहिए।

योग-शास्त्र में शवासन की प्रक्रिया का वर्णन आता है। उसे भी मैंने करके देखा है। उसमें मुख्य क्रिया सर्वथा निश्चेष्ट होकर उत्तान सो जाने की है। निश्चेष्ट सोते समय यह कल्पना करनी चाहिए कि मैं मर ही गया हूँ। ऐसे पाँच मिनट सोने से काफी विश्राम मिल जाता है। यदि दो घंटे कठोर श्रम के बाद इस तरह सभी अवयव ढीले करके निश्चेष्ट होकर सोया जाय तो चाहे नींद आये या न आये, फिर भी सारी थकान मिट जाती है। इसमें एक प्रकार का मौन ही है।

मैं यह उस समय का उल्लेख कर रहा हूँ, जब मेरे जीवन का द्वितीय पर्व समाप्त हुआ था। उन दिनों मेरा स्वास्थ्य बहुत गिर गया था। बापू ने मुझे सुझाया कि हिमालय, पंचगनी आदि स्थानों पर कहीं आबोहवा बदलने के लिए चले जाओ। उन्होंने डाक्टर को भी दिखाने के लिए कहा, किन्तु मैंने इन्कार किया। अन्त में जब स्थान-परिवर्तन करना आवश्यक ही हो गया तो मैंने कहा कि आश्रम से चार मील की दूरी पर जमनालाल जी के मकान में चला जाऊँगा। गरीब आदमी दूर-दूर कहाँ जा सकते हैं? बापू ने यह बात इस शर्त पर मान्य की कि मैं सभी तरह के विचारों से पूर्णतः मुक्त रहूँ और आश्रम आदि के बारे में कुछ न सोचूँ।

मैं इतना कमजोर हो गया था कि मुझे आश्रम से वहाँ तक मोटर से पहुँचाया गया। जमनालाल जी का बंगला नदी के उस पार था। धाम नदी के उस पार, परंधाम। नदी पार होकर परंधाम में प्रविष्ट होते समय मैंने मन-ही-मन तीन बार इस मंत्र का उच्चारण किया कि 'संन्यस्तं मया, संन्यस्तं मया, संन्यस्तं मया।' संन्यास लेने की यह एक विधि है। मैंने इसी विधि के अनुरूप किया और सारे चिन्तन से मुक्त हो गया।

पवनार जाने के बाद खाना, पीना आदि नित्य तथा आवश्यक काम चलता था। दस-पाँच मिनट कसरत भी कर लेता। ज्ञानदेव के अभंगों की पोथी साथ ले गया था, उसपर भी पाँच-दस मिनट चिन्तन कर लेता था। बाकी सारे दिन मेरा मन मुक्तानन्द में विहार करता था। दिन पर दिन तथा महीनों पर महीने बीत गये। प्रति सप्ताह मेरा वजन लिया जाता तो हर बार एक एक पौंड बढ़ा मिलता। दस मास में ३६ पौंड वजन बढ़ गया। ९० से शुरू हुआ तो १२६ पर आ पहुँचा। किन्तु बीच में एक महीना बिलकुल ही वजन नहीं बढ़ा, यह भी एक समझने की बात है। यह मैं अपनी राजविद्या, राजगुह्य प्रकट कर रहा हूँ। बात यह हुई कि फिर मैं नयी तालीम पर विचार करने लगा। एक महीना मोटर पर बैठकर नयी तालीम पर व्याख्यान देने जाया करता था। व्याख्यान देकर पुनः पवनार में लौट आता। उस समय मेरी कताई की पुस्तक प्रकाशित हुई। इसी कारण मेरा वजन नहीं बढ़ा। मेरा आहार-विहार ठीक पहले ही जैसा था, लेकिन दिमाग में चिन्तन चलता रहा, उसका प्रभाव शारीरिक स्वास्थ्य पर पड़कर रहा। एक महीने बाद पुनः मैंने शून्य मन की भूमिका शुरू कर दी। वह भी मौन ही था—वाचिक नहीं, मानसिक। यह मौन निद्रा में सहज रूप में सध जाता है, यदि स्वप्न न आये। सारांश इस तरह मेरा मौन का अनुभव उत्तरोत्तर दृढ़ होने लगा।

तीन अवस्थाएँ

प्रार्थना के समय भजन आदि हुआ ही करते हैं। उस समय कोई भक्तिमान पुरुष भजन गाया करता है तो मैं खुद ही गा रहा हूँ, यह समझता हुआ उसके एक-एक शब्द के साथ गहराई में उतरकर तन्मय हो जाता हूँ। मुझे समाधि लगते मुश्किल से पाँच मिनट लगते हैं। और जब मैं स्वयं भजन गाता हूँ, तब भी ऐसा ही होता है। लेकिन यदि कोई बिना भक्तिभाव के गाता है तो भाव उत्पन्न होने के बदले भावभंग ही हो जाता है। लेकिन जब सभी एक होकर गाते हैं तो भाव उत्पन्न होता है। तीनों अवस्थाओं का यह मेरा अपना अनुभव है। एक तो बिलकुल शब्द न हो, मौन ही हो तो मुझे समाधि का अनुभव होता है। दूसरा सामूहिक ढंग से सभी शब्द एकरस हो जाते हैं तो वही अनुभव होता है। तीसरा विशेष पुरुष विशेष स्वर बोलता हो तो भी ऐसा अनुभव होता है। जब ऐसा अनुभव हो, तभी विचार का विशेष चिन्तन होता है।

इस तरह हमारे लिए तीनों रूप हैं। एक तो पूर्ण शुद्ध, जिसे 'सत्' कहा जाता है। दूसरा भी पूर्ण रूप है, जिसमें 'सत्' और 'असत्' दोनों एकरूप हो जाते हैं। तीसरा रूप 'सत्' या 'असत्' कुछ भी नहीं होता। ये तीनों रूप भगवान के हो सकते हैं।

मान लीजिये, हम लोग गेहूँ खरीदने बाजार में जायँ और यदि मन के माफिक गेहूँ न मिले तो हम वापस लौट आ सकते हैं। इस तरह एक तो भजन के लिए ही न जायँ, खरीद ही न करें, यह रूप हुआ। दूसरा स्वच्छ, खालिस गेहूँ मिलने पर अधिक मूल्य देकर भी खरीद लिया जाय, यह रूप है। तीसरा रूप है, सारा गेहूँ ही जैसा मिले, खरीद लें और फिर उसे बीनकर कंकड़ आदि अलग कर लें तो वह भी परम शुद्ध कहा जा सकता है। वह पूर्ण भी कहा जा सकता है। इसलिए इसका भी स्वीकार कर लेना चाहिए। किन्तु कुछ भी न खरीदा जाय तो वह न तो सत् होगा और न असत् ही होगा।

हमें तीन रूप मिलते हैं—(१) किसी भी तरह के शब्द से रहित मौन। (२) स्वच्छ निर्मल परिशुद्ध, प्रेम और करुणा से भरा सत्य रूप। और (३) विश्वरूप, जिसमें बुरा और भला, शुभ और अशुभ मिला हुआ है।

इस तरह केवल सत्य या कुछ नहीं अथवा सत्य-असत्य से भरा विश्व, जिसे गीता में 'ॐ तत् सत्' कहा गया है—याने जिसे न सत् कहा जा सकता है, न असत्, निर्गुण और निराकार और जो सत् भी है और असत् भी—वह सभी लेकर दृढ़ होकर मैंने मौन का विचार शुरू कर दिया। ●●●

प्रार्थना-प्रवचन

शामलाजी १२-१'५९

नयी तालीम के सफल प्रयोग करें

[सुन्दर और लुभावने पहाड़ों के बीच से पद-यात्रा करते हुए विनोबाजी शामलाजी आश्रम में पहुँचे। आश्रमवासियों की ओर से उनका अभिनन्दन किया गया एवं उन्हें बताया गया कि आश्रमवासी पिछले दस वर्षों से शिक्षा का माध्यम लेकर जन-जागृति का कार्य कर रहे हैं। इस आदि-वासी क्षेत्र में नई तालीम के प्रति लोग काफी आकृष्ट हैं। इस पर विनोबाजी ने आश्रमवासियों को निम्न संदेश दिया। सं०]

यह पहला ही अवसर है, जब कि मैंने सुना कि बच्चों और उनके अभिभावकों को बुनियादी शालाओं का आकर्षण हो रहा है। जब तक पुरानी पाठशालाएँ थीं, तब तक अभिभावकों को उनका पाठ्यक्रम अच्छा नहीं लगता था। वे समझते थे कि बच्चे निकम्मा शिक्षण पायें, इसकी अपेक्षा घर में ही काम करें तो अच्छा है। लेकिन अब, जब नयी तालीम शुरू हुई है, चर्खा, तकली और अन्य उद्योगों का इसमें प्राधान्य दीखा है, तब अभिभावकों ने इसकी उपयोगिता समझ ली, यह बहुत महत्त्वपूर्ण बात है।

ऐसे आजकल शिक्षित लोग, जो अपने आपको काफी बड़ा एवं इज्जतदार समझते हैं, अंग्रेजी पढ़ लेना ही पर्याप्त मानते हैं। वे नहीं जानते कि अंग्रेजी पढ़ लेने भर से जीवन की सारी जरूरतें पूरी नहीं हो जातीं। शिक्षण ऐसा होना चाहिए, जो जीवन-निर्वाह में सहायक सिद्ध हो! जीवन-भार बननेवाला शिक्षण अब इस युग में नहीं टिक सकेगा।

अभी देश में नई तालीम के उत्कृष्ट प्रयोग नहीं हो रहे हैं। इससे समस्त देशवासी नई तालीम की महत्ता कैसे समझ सकते हैं? बापू की हार्दिक इच्छा थी कि राष्ट्र में नई तालीम के सफल प्रयोग हों। वे उनके रहते नहीं हो सके, लेकिन अब हमपर, खास कर जो शिक्षण विषय में तज्ज्ञ हैं, उन लोगों पर यह उत्तरदायित्व है कि राष्ट्र में नई तालीम के सफल प्रयोग करें। हर प्रान्त में कम-से-कम एक-एक प्रयोग केन्द्र तो होने ही चाहिए।

आपकी तालीम के प्रति क्षेत्रीय जनता का ध्यान आकृष्ट हुआ है, इसका अर्थ है कि इस क्षेत्र में प्रत्येक गाँव का ग्रामदान हो सकता है। ऐसी मनोवृत्ति यहाँ है तो यह क्षेत्र भी ग्रामदानी क्षेत्र बने। ●●●

विज्ञान की मदद

हमें वैज्ञानिक दृष्टि से काम कर अपने औजारों में जितनी हो सके, उन्नति करने की वृत्ति रखनी चाहिए। जो औजार मिले हैं, उन्हींपर हम सारा दारोमदार रखें तो सारे समाज को आकार देने और उसका रूप बदलने की बात न कर पायेंगे। तब हम धर्म की स्थापना भी नहीं कर पायेंगे। धर्म की स्थापना के लिए जरूरी है कि अनाज की उपज बढ़े। यह विज्ञान की शक्ति के अलावा और किसी शक्ति से संभव नहीं। इसलिए खेती, ग्रामोद्योग आदि में हमें विज्ञान की मदद लेनी पड़ेगी। ●●●

अनुक्रम

१. मेरा आन्दोलन...	डूंगरपुर	२५ जनवरी '५९	पृ० १३३
२. ग्राम-स्वराज्य हमारा...	घोड़ी	२६ जनवरी "	" १३५
३. जीवन-साधना...	देवगढ़	२० अक्टूबर '५८	" १३८
४. नई तालीम...	शामलाजी	१२ जनवरी '५९	" १४०

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ० भा० सर्व-सेवा-संघ- प्रकाशन, राजघाट, काशी द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।
फोन : १२८५
तार—प्रकाशन, राजघाट, काशी।